कर्नाटक शास्त्रीय संगीत

1. भारत के नृत्य
- शास्त्रीय नृत्य
  - भरतनाट्यम नृत्य
  - कथकली नृत्य
  - कथक नृत्य
  - मणिपुरी नृत्य
  - ओडिसी नृत्य
  - कुचिपुड़ी नृत्य
  - सत्रिया नृत्य
  - मोहिनीअट्टम नृत्य

2. भारतीय संगीत
- हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत
- कर्नाटक शास्त्रीय संगीत
- क्षेत्रीय संगीत
- संगीत उपकरण

3. भारत के रंगमंच कला
- रंगमंच कला

4. भारत के कठपुतली कला
- कठपुतली कला

भारत में प्राचीनकाल से प्रचलित संगीत शास्त्र का इतिहास वेदों की ओर जाता है । भारतीय संगीत शास्त्र से संगीत अभिव्यक्ति की नई शैलियों की खोज से पता चलता है कि मनुष्य की प्रतिभा कितनी ऊँचाई तक पँहुच सकती है । मनोरंजन के अलावा संगीत का प्रयोग मानव के व्यक्तित्व के विकास हेतु किया जाता था ताकि आन्तरिक सुख प्राप्त कर सके। इसकी एक दम सही ध्वनि प्रणाली और विस्तृत राग व भारतीय संगीत की तबला पद्धतियां इसे विश्व की अन्य आधुनिकतम संगीत पद्धति के बराबर का स्थान दिलाती हैं ।

संगीत के संबंध में हमारे पास जो प्राचीनतम शोध-प्रबन्ध है वह भारत का नाट्य शास्त्र है । भारत के बाद संगीत के संबंध में अन्य शोध-प्रबन्ध , जैसे कि मतंग का बृहद्देसी, सारंगदेव का संगीत रत्नाकर, हरिपाल का संगीत सुधाकर, रम्ममत्या का स्वरमेलकलानिधि आदि से हमें संगीत के विभिन्न पहलुओं के बारे में और भिन्न-भिन्न कालों के दौरान इसके विकास के बारे में सूचना का एक स्रोत प्राप्त होता है ।

दक्षिण भारत के प्राचीन तमिलों ने भारत की अत्यंत विकसित प्रणाली उसकी सोल्फा पद्धतियों, सुसंगत और विसंगत लेखों, सोपानों और विधियों के साथ विकसित की थी। संगीत और नृत्य के साथ अनेक वाद्य यंत्रों का भी प्रयोग किया जाता था । 'सिलप्पदिकरम' नामक द्वितीय शताब्दी ई.प. के तमिल शास्त्रों में उस अवधि के संगीत का एक सामान्य उल्लेख किया गया है । सातवीं और आठवीं शताब्दी ई.प. के शैव और वैष्णव सन्तों का योगदान और तोलकाप्पियम कोल्लादम भी संगीत इतिहास का अध्ययन करने के लिए स्रोत सामग्री उपलब्ध कराते हैं ।

भारतीय संगीत के विकास के दौरान हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत के रूप में दो उप भिन्न-भिन्न शैलियां विकसित हुई जिसका उल्लेख 14 वीं शताब्दी ई.प. में पाल शासन काल के दौरान संगीतकारों द्वारा लिखित 'संगीत सुधाकर' में पहली बार कर्नाटक और हिन्दुस्तानी शब्दों के रूप में किया गया है । हिन्दुस्तानी और कर्नाटक की दो भिन्न-भिन्न प्रणालियां, मुस्लिमों के आगमन के बाद प्रचलन में आई, विशेष रूप से दिल्ली के मुग़ल शासकों के शासन के दौरान । संगीत की दोनों ही पद्धतियाँ एक समान मूल स्रोत से फली-फूलीं। हालांकि भारत के उत्तरी भाग के भारतीय संगीत में फारसी और अरबी संगीतकारों के संगीत की कुछ विशेषताओं को शामिल किया गया है जिसने दिल्ली के मुगल शासकों के न्यायालयों को सुशोधित किया और दक्षिण के संगीत का विकास उसके अपने मूल स्रोत के अनुसार जारी रहा । तथापि उत्तर और दक्षिण की दोनों पद्धतियों के मूलभूत पहलू वैसे ही रहे ।

यह कहा जाता है कि दक्षिण भारतीय संगीत, जैसा कि वह आज जाना जाता है, मध्यकाल में यादवों की राजधानी देवगिरि में फला-फूला और मुसलमानों द्वारा आक्रमण और नगर की लूटपाट के बाद नगर का सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन विजयनगर के कृष्णादेव राय के शासन के अधीन विजयनगर के कर्नाटक साम्राज्य में संरक्षण प्राप्त हुआ। उसके बाद, दक्षिण भारत का संगीत कर्नाटक संगीत के नाम से जाना जाने लगा।

वर्ष 1484 में पुरन्दरदास के आगमन से कर्नाटक संगीत के विकास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना घटी । उन्होंने कला में पूर्ण व्यवस्था और शुद्धीकरण के जरिए यह कार्य किया । यह स्थिति आज तक वैसी ही बनी हुई है । उन्हें 'कर्नाटक संगीत का पितामह कहा जाना ठीक ही है । वह न केवल एक रचनाकार थे बल्कि सर्वोच्च कोटि के लक्षणकार भी थे । दक्षिण भारतीय संगीत, जैसा कि वह अब है, भावी पीढी के लिए उनका यह एक विशुद्ध उपहार है । उन्होंने संगीत शिक्षा के लिए बुनियादी पैमाने के रूप में मलावागोवला पैमाना लागू किया । उन्होंने संगीत सीखने वालों के लिए पाठों की एक श्रृंखला के एक भाग के रूप में श्रेणीबद्ध अभ्यास भी तैयार किया । संगीत शिक्षण में यह पद्धति आज भी विद्यमान है । पूरंदरदास द्वारा रचित स्वरावालिस, जनता वारिसस, सुलदी सप्त ताल, अलंकार और गीतम कला में निपुणता के लिए आधार बनाते हैं । संरचनात्मक शैलियों में अनेक लक्ष्य गीतम और लक्षणा गीतम, ताना वर्नम, तिल्लाना, सुलादी, उगभोग, वृत्त नम और कीर्तन उन्हीं की देन है । उनके कीर्तनों को दसरा पद अथवा देवर्नम के रूप में जाना जाता है ।

सत्रहवीं शताब्दी में, कर्नाटक संगीत में 72 मलाकार्त की एक महत्वपूर्ण योजना शुरू हुई, जिसे वेंकटामाखी द्वारा लागू किया गया है और अपनी कृति 'चतुर्दंडी प्रकाशिका' में वर्ष 1620 ई.प. में शामिल किया । मलांकार्त योजना अत्यंत विस्तृत और रीतिबद्ध सूत्र है जिसका देश के विभिन्न भागों में प्राचीन और आधुनिक संगीत प्रणालियों में प्रयोग किया जाता है । इस योजना से राग की रचना के नए मार्ग खुल गए, जैसे कि त्यागराज ने उसका अनुसरण करते हुए बहुत से सुन्दर रागों का आविष्कार किया ।

अभ्यास संगीत के क्षेत्र में दक्षिण भारत में बुद्धिमान और विविध रचनाकारों की परम्परा कायम थी जिन्होंने हजारों रचनाओं के साथ कला को समृद्ध किया । पुरंदरदास, तल्लापाकम अन्नामाचार्य नारायण तीर्थ, भद्राचलम रामदास और क्षेत्रंजा ने रचनाओं की सम्पदाओं में योगदान किया ।

सत्रहवीं शताब्दी में, कर्नाटक संगीत में 72 मलाकार्त की एक महत्वपूर्ण योजना शुरू हुई, जिसे वेंकटामाखी द्वारा लागू किया गया है और अपनी कृति 'चतुर्दंडी प्रकाशिका' में वर्ष 1620 ई.प. में शामिल

किया । मलांकार्त योजना अत्यंत विस्तृत और रीतिबद्ध सूत्र है जिसका देश के विभिन्न भागों में प्राचीन और आधुनिक संगीत प्रणालियों में प्रयोग किया जाता है ।

इस योजना से राग की रचना के नए मार्ग खुल गए, जैसे कि त्यागराज ने उसका अनुसरण करते हुए बहुत से सुन्दर रागों का आविष्कार किया ।

अभ्यास संगीत के क्षेत्र में दक्षिण भारत में बुद्धिमान और विविध रचनाकारों की परम्परा कायम थी जिन्होंने हजारों रचनाओं के साथ कला को समृद्ध किया । पुरंदरदास, तल्लापाकम अन्नामाचार्य नारायण तीर्थ, भद्राचलम रामदास और क्षेत्रंजा ने रचनाओं की सम्पदाओं में योगदान किया ।

सन् 1750 से 1850 ई.प. के बीच तिरूवरूर में संगीत की त्रिमूर्ति – त्यागराज, मुत्तुस्वामी दीक्षितार और श्यामा शास्त्री के जन्म के फलस्वरूप कर्नाटक संगीत में गतिशील विकास का युग प्रारम्भ हुआ । त्रिमूर्ति न केवल, अपने समकालीन थे बल्कि पश्चिमी संगीत के महान् रचनाकारों के भी समकालिक थे, जैसे कि बीथोवन मोजार्ट, वागनेर और हाइडेन आदि । यह पूरे विश्व में संगीत का 'स्वर्ण युग' था । इस अवधि के दौरान कर्नाटक संगीत कलात्मक उत्कृष्टता के अपने शिखर पर पहुँच गया था ।

त्रिमूर्ति काल के बाद अनेक रचनाकारों ने कर्नाटक संगीत के ध्वज को ऊँचा उठाए रखा। वीणा कुप्पाय्यर,पतनम् सुब्रमण्यम अय्यर, रामानद श्रीनिवास अयंगर मैसूर सदाशिव राव, मैसूर वासुदेवधर तथा पपनासाम सिवन जैसे कुछेक नाम हैं जिनका यहां उल्लेख किया जा सकता है ।

सुब्बारामा दिक्षितार द्वारा सन् 1904 में लिखित 'संगीत सम्प्रदाय प्रदर्शनी, पिछली शताब्दियों के संगीत, सगीतकारों और रचयिताओं के संबंध में सूचना के लिए प्राधिकृत ग्रन्थ हैं ।

दक्षिण के बहुत से संगीतकार और रचयिता हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के भी मर्मज्ञ और जानकार थे और जहां कहीं आवश्यकता होती, उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए हिन्दुस्तानी रागों को अपनाया । यमन कल्याण, हमीर कल्याण, मालकौंस, वृन्दावनी सारंग, जयजयवन्ती आदि रागों को त्रिमूर्ति संगीत में अपनाया । राग काफी, कनादा, खमाज, पराज, पूर्वी, भैरव आदि में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में शैलियां अपने प्रतिरूपों से बिल्कुल मिलती जुलती हैं ।

निबद्ध और अनिबद्ध संगीत से संबंधित अनेक संगीत शैलियां हैं, उदाहरणार्थ कल्पिता संगीत और मनोधर्म संगीत अथवा संशोधित संगीत । इन सभी शैलियों को सामान्यत: भिन्न-भिन्न शीर्षों के अन्तर्गत श्रेणीकृत किया गया है, जैसे कि शुद्ध संगीत, कला संगीत आदि । इन शीर्षों के अन्तर्गत अनेक शैलियों की अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताएं है। प्राचीन संगीत शैली, जैसे कि प्रबंध आदि, धीरे-धीरे भिन्न-भिन्न आधुनिक संगीत शैलियों तक पहुंची। हालांकि आधुनिक शैलियों में प्राचीन प्रबंधों के मूल तत्व अब भी विद्यमान हैं । इन प्राचीन प्रबंधों का प्रभाव देखने को मिलता है । बुनियादी तत्व अब भी आधुनिक शैली में विद्यमान है । निम्नलिखित संगीत शैलियां अध्ययन के लिए रुचिकर हैं ।

गीतम

गीतम सरलतम शैली की रचना है । संगीत के नौसिखियों को सिखाया जाने वाला गीतम रचना में बहुत ही सरल हैं, जिसमें संगीत का सहज और मोहक प्रवाह है । संगीत का यह स्वरूप उस राग का एक सरल मोहक विस्तार है जिसमें इसकी रचना की जाती है । इसकी गति एक समान होती है । इसमें कोई खण्ड नहीं होता जो गीत के एक भाग को दूसरे से अलग करे । इसे शुरू से लेकर अन्त तक बिना दोहराए गाया जाता है। संगीत में कोई जटिल भिन्नताएं नहीं हैं। संगीत का विषय सामान्यत: भक्तिपूर्ण होता है यद्यपि कुछेक गीतों में संगीत महानुभावों और आचार्यों का गुणगान किया जाता है । गीतम की एक उल्लेखनीय विशेषता गीतालंकारों की विद्यमानता है जैसे कि ईया, एईयम,वा ईया आदि जिन्हें मात्रिका पद कहा जाता है, जो सम गान में आने वाले ऐसे ही अक्षरों के संकेतक हैं । गीतों की रचना संस्कृत, कन्नड़ और भन्दिरा भाषा में की गई है । गणेश, महेश्वर और विष्णु की प्रशंसा में पुंरदरदास के प्रारम्भिक गीतों को संगीत के छात्रों को पढाये जाने वाले गीतों के सबसे पहले सैट में सामूहिक रूप से पिल्लारी गीत के नाम से पुकारा गया । ऊपर वर्णित गीतों की शैली से भिन्न, लक्ष्य गीत अथवा सामान्य गीतों के रूप में ज्ञात, जैसा कि इसके नाम से ही पता चलता है, राग के लक्षणों का वर्णन किया गया है, जिसमें उनकी रचना की जाती है । पैडाला गुरुमूर्ति शास्त्री, पुरंदरदास के बाद गीतों के एक महान रचनाकार थे । वेंकटामखी ने भी बहुत से लक्षण गीतों की रचना की है ।

सुलादी

संगीत प्रणाली और व्यवस्था में गीतम की तरह ही सुलादी का स्तर गीतम से उच्च स्तर का होता है । सुलादी एक तालमलिका है, खण्ड भिन्न-भिन्न तालों में होते हैं । साहित्य अक्षर, गीतों की तुलना में कम होते हैं तथा स्वर विस्तारों का समूह होता है । विषय भक्ति होता है । सुलादी की रचना भिन्न-भिन्न गीतों में की जाती हैं, जैसे विलंबित, मध्य और द्रुत । पुंरदरदास ने बहुत सी सुलादियों की रचना की है ।

स्वराजाति

इसे गीतम में पाठ्यक्रम के बाद सीखा जाता है। गीतों से अधिक जटिल, स्वराजति, वर्णमों के अध्ययन के लिए मार्ग प्रशस्त करता है । इसके अन्तर्गत तीन खण्ड सम्मिलित है जिन्हें पल्लवी अनुपल्लवी और चरनम कहा जाता है । विषय भक्ति, साहस अथवा प्रेम से संबंधित होता है । इसकी उत्पत्ति जातिआ से (ताल, सोल्फा अक्षरों, जैसे कि तका तारी किता नाका तातिन गिना ताम) एक नृत्य के रूप में हुई । किन्तु बाद में, श्याम शास्त्री ने, जो एक संगीत त्रिमूर्ति थे बगैर स्वराजाति के इसकी रचना की, जो बहुत ही सुन्दर हैं, तथा अपने संगीत मूल्य के लिए उल्लेखनीय है ।

जतिस्वरम

संगीत प्रणाली में स्वराजाति के समान ही –जतिस्वरम का कोई साहित्य या शब्दावली नहीं है । अंशों को केवल सोल्फा अक्षरों के साथ गाया जाता है । यह अपनी लय उत्कृष्टता और इसमें प्रयुक्त जाति पद्धति के लिए उल्लेखनीय है । यह, नृत्य संगीत के क्षेत्र से संबंधित एक संगीत शैली है । कुछ जातिस्वरमों में, पल्लवी और अनुपल्लवी को जातिय के अनुरूप गाया जाता है तथा स्वर और जति को मिलाने के लिए चारण गाए जाते हैं। रागमलिका जतिस्वरम भी हैं ।

वर्णम

वर्णम, कर्नाटक संगीत की एक संगीत शैली है तथा कीर्तन, कृति,जवाली, तिल्लाना आदि जैसी संगीत शैली हिन्दुस्तानी संगीत की तरह ही हैं । वर्णम का कोई प्रतिपक्ष नहीं है । वर्णम, उच्च किस्म की एक संगीत शिल्पकारी की सुन्दर रचना है जो उन रागों की सभी विशेषताओं का एक मिश्रण है जिसमें इसकी रचना की जाती है । इस शैली को वर्णम कहा जाता है क्योंकि प्राचीन संगीत में वर्णन नामक स्वर समूह पद्धतियों को वर्ण कहा जाता है जो अपने पाठ से परस्पर सम्बद्ध हैं । वर्णम गायन में अभ्यास से संगीतकार को प्रस्तुतिकरण में निपुणता प्राप्त करने और राग, ताल और भाव पर नियंत्रण करने में मदद मिलती है । गायक को ध्वनि में उत्तम प्रशिक्षण और वादक को तकनीक पर उत्तम निपुणता प्राप्त होती है । इस शैली के साहित्य में बहुत कम शब्दों और स्वरों के समूह का इस्तेमाल किया जाता है । अशं का विषय या तो भक्ति अथवा श्रृंगार होता है ।

वर्णम दो किस्म के होते हैं । एक को ताना वर्णम और दूसरे को पद वर्णम कहा जाता है । हालांकि पहले वाला सांगीतिक शैली का है जबकि दूसरा विशुद्ध: नृत्य शैली का होता है । वर्णम में दो अंग अथवा खण्ड होते हैं जिन्हें पूर्वांग कहा जाता है जिसमें पल्लवी, अनुपल्लवी और मुक्तायी स्वर तथा उत्तरांगा अथवा एतुकादायी में चरनम और चर्ण स्वर सम्मिलित होते हैं। तान वर्णम की भांति सभी अंगो के लिए पाद वर्णम का साहित्य अथवा शब्द होते हैं, जो केवल पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरनम् के लिए साहित्यम् है ।

वर्णम सभी प्रमुख रागों को मिलाकर रचित किया जाता है तथा सभी प्रमुख तालों में अधिकांश छोटे-मोटे राग होते हैं । पश्चिमीरियम, अदिप्पाय्या, सोन्ती वैंकटसुब्बैय्या, श्याम शास्त्री, स्वाति तिरूनाल सुब्रामण्यम् अय्यर, रामानंद श्रीनिवास अयंगर और मैसूर वासुदेवाचार वर्णमों के प्रमुख रचनाकार थे ।

कीर्तनम

कीर्तनम की उत्पत्ति चौदहवीं शताब्दी के लगभग उत्तरार्ध में हुई थी । यह, सरल संगीत में रचित साहित्य की भक्ति भावना के लिए जाना जाता है, कीर्तनम भक्ति भाव से ओत-प्रोत है । यह सामूहिक गायन और अलग-अलग प्रस्तुतिकरण के लिए उपयुक्त है । पन्द्रहवीं शताब्दी के तालापाकम रचियेता, खण्डों, पल्लवी, अनुपल्लवी और चरणों के साथ कीर्तनम के प्रथम रचियेता थे । सामान्यत: दो से अधिक चरण होते हैं जिनमें सभी का संगीत एक समान होता है । सभी महत्वपूर्ण पारम्परिक रागों में रचित और सरल तालों के लिए कीर्तनम उच्चतम शैली का आत्मा-विभोर करने वाला संगीत हैं ।

कृति

कृति कीर्तन से विकसित हुआ रूप है । यह रूप अत्यंत विकसित संगीत शैली है । कृति संरचना में सौन्दर्य उत्कृष्टता की उच्चतम सीमा प्रस्तुत की जाती है । इस शैली में सभी समृद्ध और विविध रागभावों को प्रस्तुत किया जाता है । जो कि संगीत शैली में
कृति की उत्पत्ति के बाद ही संगीत संरचना में निश्चित शैली की संभावना बनाती है । पल्लवी, अनुपल्लवी और चर्णम कृति के न्यूनतम और अनिवार्य अंग है । पहले पल्लवी गाया जाता है, उसके बाद अनुपल्लवी तथा पल्लवी के साथ समापन होता है । उसके बाद चरनम् गाया जाता है तथा उसे समाप्त करने से पहले पल्लवी के साथ जोडा जाता है। कर्नाटक संगीत त्रिमूर्ति का आभारी है जिसने कि कृति के रूप में निबद्ध संगीत के क्षेत्र में ऐसा स्मरणीय योगदान दिया । सभी विद्यामान रागों में और सभी प्रमुख तालों में कृतियां हैं । एक संगीत के रूप में कृति की हिन्दुस्तानी संगीत के ध्रुपद के साथ बड़ी मिलती-जुलती विशेषताएं हैं । मुत्तुस्वामी दिक्षितार ने ध्रुपद शैली में बहुत सी कृतियों की रचना की है ।

इसके अलावा कृतियों में सुन्दरता के लिए बहुत से आलंकारिक अंग भी जोड़े जाते हैं । ये हैं: (क) चित्तास्वर अथवा सोल्फा पथों का एक सेट जिसे अनुपल्लवी और चरणम् के अन्त में गाया जाता है (ख) स्वर-साहित्य- चित्तस्वर के लिए एक उपयुक्त साहित्य की आपूर्ति की जाती है ।, (ग) माध्यमकला साहित्य-कृति का एक महत्तवपूर्ण भाग, (घ) सोलकत्तु स्वर- चित्तस्वर के समान है – इसमें स्वरों के साथ-साथ जातियाँ होती हैं,
(ड.) संगति-एक संगीत विषय में भिन्नताएं जो धीरे-धीरे विकसित होती हैं । (च) गमक- धातु गमकाओं से भरपूर होती है, (छ) स्वराक्षर धातु मातु अलंकार-जहां स्वर और साहित्य एक समान होते हैं, (ज) मनु-प्रवाल सुन्दरता-कृति के साहित्य में दो अथवा तीन भाषाओं के शब्द सम्मिलित होते है, (झ) शास्त्रीय सुन्दरता, जैसे कि प्रास, अनुप्रास, यति और यमक भी बहुत सी भाषा आकृतियों में प्रमुख रूप से सम्मिलित होते हैं ।

पदु

पद, तेलुगु और तमिल में विद्वत्तापूर्ण रचनाएँ है । यद्यपि ये मुख्यत: नृत्य रूपों में रचित होती हैं तथापि ये संगीत कार्यक्रमों में भी गाई जाती हैं जिसके कारण संगीत में उत्कृष्टता और सुन्दरता पैदा होती है । पद में भी खण्ड, पल्लवी और चरण खंड भी होते हैं । संगीत धीमा और उत्कृष्ट होता है । संगीत का प्रवाह स्वाभाविक होता है तथा शब्दों के बीच सतत सन्तुलन होता है तथा पूरे नृत्य में संगीत को बनाए रखा जाता है । विषय में माधुर्य भक्ति होती है जिसे बहिर श्रृंगार तथा अन्तर-भक्ति श्रृंगार के साथ पदों में गाया जाता है । नायकों का चरित्र, नायक तथा सखी, भगवान, जीवात्मा तथा गुरु का प्रतिनिधित्व करता है । जो उसके संत गुरु की सलाह से भक्त को मुक्ति का पथ दिखाता है । बहुत से रागों में उनके भावों को उपयुक्त रागों द्वारा प्रतिबिंबित किया जाता है ।

गाए जाने पर पद उस राग का उत्कर्ष प्रस्तुत करते हैं जिसमें वह रचित है । विशिष्ट रसभाव के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय राग, जैसे कि आनन्दभैरवी, सहाना, नीलमबारी, अहीरी, घन्टा, मुखरी, हुसैनी, सुरति, सौराष्ट्म और पुन्नागावार कुछेक उल्लेखनीय हैं जिन्हें पदों के लिए चुना जाता है । क्षेत्ररजना पदों के सर्वश्रेष्ठ रचयिता हैं।

जवाली

जवाली, सुगम शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र से संबंधित एक रचना है । इसे सामूहिक संगीत कार्यक्रमों और नृत्य समारोहों दोनों में गाया जाता है । जवाली उन आकर्षक लयों के लिए लोकप्रिय हैं जिनमें वे रचित हैं । पदों के विपरीत ईश्वरीय प्रेम प्रदर्शित करते हैं । जवाली ऐसे गीत हैं जो अवधारणा और भावना की दृष्टि से इन्द्रियगत हैं । ये सामान्यत: मध्यम कला में रचित होते हैं । इन शैलियों में भी, नायक, नायिका और सखी ही विषयतस्तु होते हैं, किन्तु साहित्य की कोई दोहरी व्याख्या नहीं होती । जवाली की आकर्षक और मोहक लय उनके आकर्षण को और बढा देती हैं । परज, काफी, बेहाग,झिनझोटी, तिलंग आदि जैसे देशज रागों का भी इन रचनाओं में प्रयोग किया गया है । जवाली तेलुगु, कन्नड़ और तमिल में रचित होती हैं ।यह शैली हिन्दुस्तानी संगीत की ठुमरियों के समान ही है ।

तिल्लाना

हिन्दुस्तानी संगीत में तराना के अनुरूप ही तिल्लाना भी एक लघु और संकुचित शैली है। यह मुख्यत: एक नृत्य शैली है, किन्तु तेज और आकर्षक संगीत के कारण इसे कभी-कभी अन्तिम अंश में शामिल किया जाता है । यह सामान्यत: जतियों के साथ शुरू होते हैं ।

तिल्लाना के नाम में लयात्मक अक्षर, ति-ला-ना सम्मिलित हैं । यह संगीत शैली की एक सजीवतम शैली है । कहा जाता है कि इसकी उत्पत्ति अठारहवीं शताब्दी में हुई । तिल्लाना का साहित्य संस्कृत, तेलुगु और तमिल में मिलता है । साहित्य के योगदान के साथ लयात्मक सेल्फा अक्षरों की मिलावट से तिल्लाना शैली की सुन्दरता में वृद्धि करता है । तिलाना में संगीत तुलनात्मक रूप से धीमी गति का होता है जो नृत्य प्रयोजनार्थ होता है। पल्लवी और अनुपल्लवी के अन्तर्गत जातियाँ सम्मिलित हैं तथा चरन में साहित्य, जतियाँ और स्वर सम्मिलित हैं । रामनाथपुरम् श्रीनिवास आयंगर, पल्लवी शेषाय्यर और स्वाति तिरुनाल तिल्लानाओं के कुछेक प्रमुख रचयिता हैं ।

पल्लवी

यह रचनात्मक संगीत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शाखा है । मनोधर्म संगीत की इस शाखा में ही संगीतज्ञों के लिए अपनी रचनात्मक प्रतिभा, विचारात्मक दक्षता और संगीत प्रबुद्धता प्रदर्शित करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है । पल्लवी शब्द का विकास तीन शब्दों यथा पदम, जिसका अर्थ, शब्द है लयम, जिसका अर्थ समय है और विनयासम, जिसका अर्थ भिन्नताएं हैं, से हुआ है । पल्लवी के लिए चुने गए शब्द या तो संस्कृत, तेलुगु अथवा तमिल से हो सकते हैं तथा किसी भी विषय पर हो सकते है, यद्यपि भक्ति को प्राथमिकता दी जाती है । न तो साहित्य और न ही संगीत पूर्व- संरचित है । गायक को साहित्य, राग और ताल चुनने की छूट होती है । दो भाग- प्रथमागम और द्वितीयागम, सक्षिप्त विराम की अवधि द्वारा बँटे हैं, जिन्हें पदगर्भम कहा जाता है, जैसे-जैसे संगीत भिन्नताएं विकसित होती है तथा बढ़ती हुई जटिलता के स्तरों से आगे बढ़ती हैं साहित्यम् को दोहराया जाता है । हिन्दुस्तानी संगीत के ख्याल में कर्नाटक संगीत की पल्लवी के साथ काफी समानता है । विकास के ख्याल में कर्नाटक संगीत की पल्लवी के साथ काफी समानता है । कल्पना स्वरों को विकास के भिन्न-भिन्न चरणों के बाद संगतियों, अनुलोम तथा प्रतिलोम (दोहरी और चौगुनी गतियों में तथा इसके विपरीत में विषय का गायन) सहित पल्लवी के साथ गाया जाता है । कभी-कभी कल्पना स्वर, रागमलिका पल्लवी प्रस्तुत करने के लिए भिन्न रागों में गाए जाते हैं ।

'निरावल' का शाब्दिक अर्थ समायोजनों द्वारा भराव है । संगीत पद्धति में, इसका अर्थ संगीत विषय में सुधारों के साथ लयात्मक गायन के अन्दर साहित्य के गायन की कला से है । कृति से साहित्य स्वरूप की एक उपयुक्त पंक्ति चुनी जाती है तथा संगीत संबंधी सुधार ताल के प्रत्येक चक्र में किया जाता है । पल्लवी में, निरावल आवश्यक है और कृतियों में एक विकल्प है ।

तनम

यह राग अल्पना की एक शाखा है । यह, मध्यमाकला अथवा मध्यम गति में राग अल्पना है । आकर्षक पद्धतियों का पालन करते हुए, संगीत का लयात्मक प्रवाह, तनम गायन को राग का सर्वाधिक आकर्षक भाग बना देता है। 'अनन्तम' शब्द का प्रयोग संगीत प्रणालियों के साथ विलय करने के लिए किया जाता है ।

संक्षेप में, कर्नाटक संगीत की विशेषता इसकी राग पद्धति है जिसकी अवधारणा में 'पूर्णसंगीत' अथवा आदर्श निहित होता है तथा यह अत्यंत विकसित और जटिल ताल पद्धति है जिसने इसे अत्यंत वैज्ञानिक और रीतिबद्ध तथा सभी दृष्टिकोणों से अनूठा बना दिया है । कर्नाटक संगीत में हिन्दुस्तानी संगीत के घरानों की तरह ही प्रस्तुतीकरण की शैली में स्पष्ट सीमांकन देखने को नहीं मिलता, फिर भी हमें भिन्न-भिन्न शैलियां देखने को मिलती हैं ।

प्रकाशनाधिकार © सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
15 ए, सैक्टर-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार
दूरभाष नं0 (011) 25088638, 25309300, फैक्स 91-11-25088637, ई-मेल dir.ccrt@nic.in